Chapter- 2

द्वितीय अध्याय

कुमाऊँनी संस्कृति

द्वितीय अध्याय

कुमाऊँनी संस्कृति

कुमाऊँ शब्द की उत्पत्ति :

[1]('कुमाऊँ' शब्द की व्युत्पति और प्रचलन के संबंध में भिन्न-भिन्न धारणाएँ है, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं –

(१) ''कुमू'' या ''कुमाऊँ'' शब्द ''कूर्म'' या ''कूर्माचल'' का तद्भव है : अल्मोड़ा के दक्षिण – पूर्व में चम्पावत के निकट स्थित कानद्या (कानदेव) नामक पर्वत है, जिसका आकार ''कूर्म'' जैसा है। इस पर्वत शिखर की ऊँचाई सात हजार फीट है। किंवदन्ती है कि भगवान विष्णु ने कूर्म अवतार के समय इस पर्वत शिखर पर तीन वर्ष तपस्या की थी। इसी कूर्म नाम से इस पर्वत प्रदेश के आसपास का भूभाग ''कूर्मांचल'' कहलाया। बाद में सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र के लिए यह शब्द ''कुर्मांचल'' या ''कुमाऊँ'' में रुप में व्यवहृत होने लगा। ''कूर्म'' से ''कुमू'' या ''कूर्माचल'' से ''कुमाऊँ'' शब्द का विकास निम्न रुप में हुआ –

(१) कूर्माचल – कुम्माअओ – कुमओ – कुमऊ – कुमू – कुमौं – कुमाऊँ।
(।।) कूर्म – कुम्म – कुमूँ – कुमौं – कुमाऊँ।

(२) इस क्षेत्र के लोग खूब ''कमाऊँ'' हैं इसीलिए इस क्षेत्र का नाम ''कमाऊँ' या ''कुमाऊँ'' पड़ा।)[1]

(३) ''कालू वजीर'' के नाम से इसका नाम कुमाऊँ पड़ा। राजा ज्ञानचंद के दरबार में कालू का वर्णन आता है। इसलिए इसे ''कालि कुमूँ'' कहा जाने लगा। जो

आगे चलकर ''कुमूँ'' में परिवर्तित हो गया जिससे विकसित होते – होते यह ''कुमाऊँ'' शब्द बन गया।

(४) कहा जाता है कि कुंभकर्ण का सिर इस क्षेत्र में कटकर गिरा था। जिससे वहाँ एक तालाब बन गया था। तथा बाद में कुंभकर्ण का नाम के आधार पर ''कुमूँ'' नाम पड़ गया।

परंतु शेष तीन व्यर्थ की कही बातें लगती है। प्रथम सत्य धारणा प्रतीत होती हैं।

[२](संस्कृत ग्रंथो में कुमाऊँ के लिए ''कूर्माचल'' शब्द का उल्लेख मिलता है। ''स्कंदपुराण'' में ''कूर्माचल'' का वर्णन हिमालय के पाँच खण्डों में से एक खंड के रुप में आया है।

''खंडा पंचहिमालयस्य कथिता नेपाल कूर्मा चलौ।

केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिरः कश्मीर संज्ञोऽन्तिमः।।''

''शक्ति संगतंत्र'' में कुमाऊँ को ''कूर्मप्रस्थ'' कहा गया है।

''कूर्मप्रस्थं महेशानि कथ्येते श्रुणु साम्प्रतम्।

गोकर्णेश दक्षभागे कामाख्या पूर्वगोचरः।

उत्तरे मानसेशः स्यात् पश्चिमे शारदा भवेत्।''

''अंग्निपुराण'' में लिखा है।

''वक्ष्ये कूर्मावतारं च श्रुत्वा पाप पुणाज्ञनम।

पुरा देवासुरे युद्धह्य दैत्यैदेवाः पराजिताः।।''

कूर्मारुपं समास्थाय दधे विष्णुश्च मंदरम।

क्षीराब्धेर्मथ्यमाना च विषंहलाहलाह्यंभूत्।।'')[२]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि संस्कृति शब्द से तात्पर्य कृ (करना) धातु में ''सम्'' (सन्यक्) उपसर्ग और ''क्तिन्'' (स्त्री) प्रत्यय के योग से निर्मित है। जिसका अर्थ है ''सम्यक् (समान) रुप से किया जाने वाला आचार – व्यवहार।

यदि सामान्य भाषा में देखा जाय तो संस्कृति का अर्थ होता है अच्छा व्यवहार, कल्याणकारी, सुन्दर, रूचिकर व्यवहार। संस्कृति शब्द का अर्थ एक संकुचित नहीं है। कई भारतीय विद्वानों ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है।

[३](**श्री के. एम. मुंशी :** ''हमारे रहन – सहन के पीछे जो हमारी मानसिक अवस्था, मानसिक प्रकृति है जिसका उद्देश्य हमारे जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना है वही संस्कृति है।''

रेडफील्ड : ''संस्कृति कला और उपकरणों में प्रकट परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रुप है जो परम्परा के द्वारा संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।''

मैथ्यू आर्नल्ड : ''संस्कृति का तात्पर्य उस सुन्दरतम से अपने को भिज्ञ करना है जो कुछ ज्ञात है और जो कुछ कहा गया है।'')[३]

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि संस्कृति अर्थात् किसी भी मनुष्य का अच्छा व्यवहार निरन्तर विकास, व्यवहार में शिष्टता, तहजीब, पवित्रता (विचारों में) यही संस्कृति है।

संस्कृति तथा सभ्यता में अन्तर :

संस्कृति के बारे में जैसा कि स्पष्ट हो चुका है। कि किसी भी व्यक्ति का व्यवहार, शालीनता, व्यवहारिक शिष्टता आदि होता है।

सभ्यता का अर्थ उसके (व्यक्ति) के रहन – सहन, खान – पान, वेशभूषा आदि है। [४]''संस्कृति में किसी भी समाज विशेष के जातिय आदर्श, सामाजिक मूल्य और मानसिक तथा भावनात्मक पहलू व्यक्त होते है। जबकि सभ्यता में भौतिक पदार्थ उनके निर्माण और प्रयोग की विधियाँ सन्निहित रहती है।''[४]

हम चर्चा कर चुके हैं सभी क्षेत्र की अपनी – अपनी संस्कृति होती है। उसके अपने मूल्य होते है। भारत एक विशाल समृद्ध देश है इसमें अपने कई राज्य है कई क्षेत्र है। यहाँ पर कई प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है। सबकी अपनी भाषाएँ तथा जातियाँ पाई जाती है। कहीं पर रेगिस्तान, कहीं पर पर्वतीय प्रदेश, कहीं घने वन, कहीं शुष्क मरुस्थल पाये जाते हैं।

कुमाऊँ की संस्कृति भी विशाल भारतीय संस्कृति का एक छोटा सा अंग है।

सामाजिक विकास की दृष्टि से किसी भी समाज को दो वर्गों में बाँटा गया है (१) सामान्य वर्ग (२) अभिजात वर्ग। इस दृष्टि से कुमाऊँनी संस्कृति को दो रुपों में परिलक्षित होती है (१) लोक संस्कृति (२) अभिजात संस्कृति।

कुमाऊँनी संस्कृति में लोक संस्कृति का प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है। वहाँ पर साहित्यिक रचनाओं को धार्मिक अनुष्ठानों में ही आभिजात्यता के दर्शन होते हैं। यहाँ के लोगों में अब भी अपनी संस्कृति के पूर्ण दर्शन कहीं – कहीं और कहीं – कहीं न्यूनतम रुप में होते है। जो लोग शहरों की तरफ बस गये हैं। उनमें कम तथा

जो कुमाऊँनी क्षेत्र में हैं उनमें सम्पूर्ण रुप से संस्कृति के दर्शन होते है। मगर शहरों में बसने वाले कम ही लोग है।

यहाँ बसनेवाले अर्धसभा, अशिक्षित, अर्धशिक्षित मध्यम वर्ग के व्यक्तियों ने यहाँ की संस्कृति को जीवित रखा है।

कुमाऊँनी संस्कृति की अभिव्यक्ति आचार – विचार, बोली – भाषा, कला शिल्प, धर्म दर्शन, साहित्य, प्रथा – परम्परा, रीति रिवाज आदि से होती है। तथा लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं, लोक नृत्यों, लोकोक्तियों, पहेलियों, मुहावरों, क्षेत्रीय देवी देवताओं, त्यौहारों, उत्सवों, मेलों, अलग – अलग धार्मिक सम्प्रदायों, वर्ण व्यवस्था आदि से कुमाऊँनी लोक संस्कृति की तथा अभिजात संस्कृति की झलक मिलती है।

कुमाऊँनी साहित्य :

प्रयोग की दृष्टि से कुमाऊँनी साहित्य को दो भागों में बाँटा गया। (१) लोक साहित्य (मौखिक रुप से प्रचलित साहित्य) (२) अभिजात या परिनिष्ठत साहित्य (लिखित साहित्य)

कुमाऊँ लोक साहित्य :

कुमाऊँनी लोक साहित्य का वर्गीकरण अभिजात की दृष्टि से कुमाऊँनी लोक साहित्य के दो भेद किए गए है :

(१) **श्रव्य और दृश्य** : श्रव्य तथा दृश्य के अन्तर्गत चाँचरी, छपेली, झोड़ा आदि आते हैं। गेयथा अथवा लय को आधार मानकर कुमाऊँनी लोक साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया है। (१) गद्य (२) पद्य (३) चम्पू।

गद्य में कथाएँ, कहानी, मुहावरे, कहावतें, आदि आती है तथा पद्य में झोड़ा, चाँचरी तथा चम्पू के अन्तर्गत प्रबंधात्मक गेय, मुक्तक इत्यादि आते है।

कहावतें :

लोगों द्वारा जो लोकवाणी में कही जानेवाली लोक उक्ति को लोकोक्ति कहा जाता है। और इसी लोकोक्ति को ''कहावत'' कहते है। यह शब्द अंग्रेजी के (Proverb) के लिए प्राय: रुढ़ बन गया है।

कहावत के लिए संस्कृत में ''आभाणक'' ''सूक्ति'' व ''सुभाषित'' शब्दों का प्रयोग देखने का मिलता है तथा कुमाऊँनी में किस्सा या बातें शब्द उपयोग होता हैं। कुमाऊँनी में ५००० से ज्यादा कहावतें है। इसको निम्न वर्णों में बाँटा गया है।

(१) सामजिक, ऐतिहासिक, धर्मिक, नीति और उपदेश संबंधी, राजनीति संबंधी, स्थान विशेष से संबंधित, जातीय विशेषताओं से संबंधित, हास्य – व्यंग, कृषि तथा प्रकीर्ण संबंधी कहावतें।

[५]कुमाऊँ में प्रयोग, व्यवहार और प्रचलन की दृष्टि से सामाजिक कहावतें बहुत अधिक मात्रा में है।[५]

मुहावरे :

मुहावरे का अर्थ होता है साधारण अर्थ के स्थान पर विषेश अर्थ बताने वाले वाव्यांश को ''मुहावरा'' कहते हैं। जैसे – अंगार सिर पर धरना – कठिन दु:ख झेलना।

अंग्रेजी में इसके लिए ईडियम (Idiom) शब्द है। यह मुहावरा शब्द मुलत: अरबी भाषा का है जिसका अर्थ होता है आदी, अभ्यास या बाताचीत। मुहावरे बने –

बनाए नहीं थे यह भी लोगों के द्वारा बार – बार प्रयोग किए जाने पर यह रुढ़ बनते गये। इसका प्रयोग लोग बडी सरलता तथा सहजता से कथन के साथ करते रहते हैं।

कुमाऊँनी कहावते या मुहावरे का समानार्थी हिन्दी भाषा में नहीं मिलते। जैसे (१) क्वीड़ करण (गप मारना) अधिकतम ''कसक मारण'' वाला मुहावरा प्रयोग होता है।

[६](मुहावरों को निम्न भागों में बाँटा गया है (१) सामाजिक जीवन संबंधी वैयक्तिक विशेषाताओं पर प्रकाश डालने वाले, व्यवसाय संबंधी जाति विषेयक भाग्य व जीवन – दर्शन विश्वास संबंधी मुहावरे।)[६]

पहेलियाँ :

पहेली को संस्कृत में पहेलीका कहते हैं। यह पहेली शब्द उसी से बना है। अंग्रेजी में 'रिडिल' (Riddle) कहते हैं। तथा कुमाऊँनी में 'आण' या 'ऐन' कहा जाता है।

पहेलियों को लागों की बुद्धि परखने के लिए प्रयोग किया जाता है तथा उसका उत्तर एक शब्द में होता है। जैसे – हिन्दी में अमीर खुसरो ने लिखा है।

एक थाल मोती से भरा

सबके सिर पर औंधा धरा

चारों ओर थाल फिर

मोती फिर भी एक ना गिरे।

उत्तर – आकाश

[७](पहेली प्रतिकात्मक, बिम्बात्मक, सादृश्यमूलक, रहस्तयात्मक, गूढ़ और अप्रत्यक्ष – कथन पर आधारित होती है। अतः एक ही प्रतीक अनेक अर्थो को भी द्योतित करता है। भाषा – संरचना की दृष्टि से पहेलियाँ पूर्ण वाक्य होती हैं। इनमें गेयता, ध्वन्यात्मकता, तथा तुकान्तता भी रहती है।)[७]

पहेलियाँ अत्यंत प्राचिन हैं। ऋगवेद को तो पहेलियों का वेद कहते हैं। भारतीय साहित्य तो पहेलियों का खजाना है। कुमाऊँ में भी अथाह पहलियों का खजाना है।

कुमाऊँनी में प्रकृति संबंधी, कृषि घरेलू वस्तुओं, भोजन, शरीर, प्राणी तथा बहुत से अन्य पहेलियाँ है।

कुमाऊँ का भौगोलिक विस्तार :

(क्षेत्र)

भारत में उत्तर में महा हिमालय के दक्षिण ढ़ाल को पर्वतीय क्षेत्र कहते है। इसमें आठ जनपद हैं – पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, नैनीताल, चमोली, उत्तरकाशी, पौड़ी गढ़वाल, टेहरी गढ़वाल तथा देहरादून। इसको उत्तराखण्ड के नाम से जानते हैं। उत्तराखण्ड को दो भागों में बाँटा हैं। (१) कुमाऊँ मंडल (२) गढ़वाल मंडल।

पहले तीन जनपद कुमाऊँ के है। बाकी गढ़वाल जनपद के हैं।

[८](भौगोलिक दृष्टि से कुमाऊँ २८°, ५१ और ३०°, ४९ उत्तरी अक्षांश तथा ७७°, ४३ और ८१°, ३१ पूर्वी देशानतर के बीच स्थित है। कुमाऊँ का कुल क्षेत्रफल २१°, ३२ वर्ग किलोमिटर है। कुमाऊँ के अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ जनपदों में नगरीय जनसंख्या काम और नैनीताल में अधिक है।)[८]

कुमाऊँ क्षेत्र का अपना भौगोलिक विस्तार इस प्रकार से है। कुमाऊँ का भौगोलिक विस्तार ३६,८०,००० एकड अर्थात् ८००० वर्गमील के लगभग है। जिसमें २,००,००० एकड़ जमीन आबाद तथा १,००,००० एकड़ आबादी (भौगोलिक दृष्टि से कुमाऊँ २८° ५१ और ३०° ४९ उत्तरी आक्षांश तथा ७७° ४३ और ८१° ३१ पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है।) के योग्य है। ४० से ५० हजार तलाऊँ या जल संचित है ई. सन् २००० से पहले कुमाऊँ के तीन जिले अल्मोड़ा, नैनीताल तथा पिथोरागढ़ थे। ९ नवम्बर २००० को उत्तरांचल निर्माण के पश्चात् यह कुमाऊँ क्षेत्र छः जिलों में विभाजित हो गया (१) अल्मोड़ा (२) नैनीताल (३) पिथौरागढ़ (४) चम्पावत (५) बागेश्वर तथा उधमसिंह नगर।

जलवायु :

पर्वतीय क्षेत्रों में नाना प्रकार की जलवायु पाई जाती है। यहाँ पर कहीं – कहीं बर्फों वाले क्षेत्रों में बहुत ठंडी रहती है तथा छः हजार से ऊँचे पर्वतों में हमेशा ठंडी होती है। गर्मीयों में भी ठंडक रहती है। २ – ३ हजार फुट की ऊँची जगहों पर हवा गर्म होती है पर लू जैसी कोई बात नहीं होती। पहाड़ों में घाटीयों की आबोहवा अच्छी नहीं होती। वहाँ ठंडी में अधिक ठंडक तथा गर्मीयों में अधिक गर्मी पड़ती है जैसे बरसात व गर्मी में तराई भाबर में होता है। पर भाबर में आबोहवा अच्छी रहती है तराई भाबर में लोग अधिकतर मलेरिया से ग्रस्त रहते हैं। तथा मच्छर भी अधिक पाये जाते हैं। यहाँ बर्फ भी नहीं गिरती।

पहाड़ की चोटीयों में मौसम खुशगवार रहता है। हिमालय में तो थोड़ी सी बरसात के बाद बर्फ गिरती ही रहती है। इसलिए वहाँ हमेशा बर्फ पायी जाती है। वहाँ की भूमि १० से ४००० फुट तक बर्फ से ढ़क जाती है। नीचले क्षेत्रों में ७ – ८ हजार

फुट की ऊँचाई में अप्रैल – मई तक बर्फ रहती है। जनवरी तथा फरवरी में बहुत जाड़ा रहता है। उसके नीचले क्षेत्रों में अकसर तीसरे साल में बर्फ पड़ती है।

बर्फ गिरते समय ऐसा लगता है जैसे कि रूई आसमान से गिर रही हो। चारों तरफ सन्नाटा छा जाता है। वह दृश्य देखते ही बनता है। चारों तरफ बर्फ ही बर्फ नजर आती है। पेड़ की एक – एक डाली पर बर्फ जम जाती है। ऐसा प्रतीत होता है बर्फ का ही पेड है।

तापमान :

अल्मोड़ा में जो ५५०० फुट समुद्र सतह से ऊँचा है। पारा ९२° तक गर्मी में होता है। तथा नैनीताल में ८५° ज्यादा ३० – ३२° तक नीचे चला जाता है। धूप में कहीं – कहीं ११०° तक तापमान मापा जाता है। तराई में कहीं – कहीं ११६° – ११७° गर्मी पड़ती है। शाम को कम हो जाती है। गर्मीयों में नैनीताल, चौबटिया, बिनसर आदि पर्वतों में, बरसात में अल्मोड़ा और ठंडीयों में हल्द्वानी का मौसम खुशगवार होता है।

जलवर्षा :

बरसात में हिमालय के भागों में भारी वर्षा होती है। उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों को छोड़कर राज्य के प्रमुख भागों में वर्षा का वार्षिक औसत ९४ से.मी. रहता है। नैनीताल में सबसे अधिक ९८ इंच तक वर्षा होती है। सन् १८९३ में १५८ इंच पानी पड़ा था। काठ गोदाम में हर साल ९१ इंच, हल्द्वानी में ९१, रामनगर में ६५ इंच, किलपुरी में ६४ इंच, रूद्रपुर में ५७ इंच तथा काशीपुर में ४६ इंच पानी पड़ता है।

अल्मोड़े में ६० इंच औसत वर्षा होती है ऐसा ही रानीखेत में भी है। अल्मोड़े का पानी बिनसर, गागर, मुक्तेश्वर, स्याहीदेवी आदि पर्वत खींच लेते हैं। कौसावी में

५० – ६० इंच, बेनीनाग ७२ इंच, चौकोड़ी में ९२ इंच पानी पड़ता है। जब बम्बई में बरसात शुरु होती है तब पर्वतीय क्षेत्र में बहुत पानी बरसता है। इसको छोटी बरसात भी कहते हैं। पर्वतों में अधिकतर हर महीने पानी पड़ता है।

बिमारियाँ :

शिक्षा का अभाव तथा खान – पान वैज्ञानिक पद्धति ना होना, व्यायाम की कमी, स्वच्छता की कमी, नित्य स्नान न होना, गौशाला आदि स्वच्छ न रखने की वजह से यहाँ पर कफ, पित्त, वात, ज्वर विशेष बिमारी है। दस्त व आँव की बीमारी तो आम हो गयी है। प्लेग, चेचक भी कभी – कभी होता है। हैजा की बिमारी यात्रा भ्रमण से या मेले से फैलता है या कभी ज्यादा गर्मी पड़ने तथा बरसात देर से होने से होता है। गलगंज तो अधिकतर लोगों को होता है।

बीमारी होने पर लोग देवी देवताओं का प्रकोप समझकर उसकी पूजा करते हैं। क्षय रोग यहाँ सुनने में भी न आता था परन्तु जब से यहाँ सेनिटोरियम बने तब से क्षय रोग बढ़ गया।

सनजर भी यहाँ होता है इससे बहुत लोग मरते है। यह एक संक्रमक रोग है। किराये के लालच से लोगों ने जो मकान दिये वहाँ सफाई न होने से रोग अधिक मात्रा में फैल गये।

''कोढ़'' भी यहाँ देखा जाता है। सन् १८४० में २० कोढ़ियों के लिए कोढ़ी खाना खोला गया जिनकी संख्या १९३५ में ९५ थे १९११ में ९२७ थे। टीका लगाने की रीति यहाँ अंग्रेजो ने चलाई थी। (चेचक का)। वर्तमान समय में प्लेग, हैजे के टीके भी लगते हैं। प्लेग की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है। यहाँ की भाषा में इसे पुटकिया कहते हैं।

पशु :

पर्वतीय क्षेत्र से तराई तक विभिन्न प्रकार के पशु पाये जाते है। पालतू जानवरों में हाथी, ऊँट (तराई भावर) घोड़े, खच्चर, गधे, गाय, भेंस, बैल, सुअर, भेड़, बकरी, चँवरगाय, झूप्पू कुत्ते, भोटिये कुत्ते। जंगली जानवरों में जंगली हाथी तराई भाबर में धारीदार बड़ा बाघ जो नरभक्षी होता है वह पाया जाता है। जंगली घोड़े, गधे, क्योग, याक, तिब्बती भेडिये, तिब्बत की तरफ पाये जाते हैं। बाघ की कई किस्म होती है गुलदार, लकड़बग्घा, चीता, तेंदुआ आदि। हिमालय की बर्फ में सफेद भालू पाया जाता है। ज्यादातर यहाँ काला भालू होता है। भाबर में भूरे रंग का भालू होता है। नीलगाय व हिरन तराई भाबर में देखा जाता है। बारहसिंगे, चीतल, पाड़ा आदि घुरड़, काँकड़, बरड़, सुर्रा पहाड़ में देखे जाते हैं। बरड बहुत तेज जानवर माना जाता है। यह कई हजार फुट नीचे कूद जाता है। इसका शिकार बहुत स्वादिष्ट होता है। यहाँ दो तरह के बंदर पाये जाते हैं लंगूर तथा रतुवा। जिसका मुँह व नितम्ब लाल होता है। चुथरौल भी एक खुबसूरत जानवर होता है। जिसका पशम मुलायम होता है।

कस्तुरी भी यहाँ पायी जाती है। जिसका लोग नाभी के लिए शिकार करते हैं। मगर वर्तमान समय में इसकी देखभाल की जाती है। सरों भी बड़ा तेज जानवर होता है। यह ऊँची कंदराओं तथा घनी झाड़ियों में रहता है। अन्य जानवरों में खरगोश, जंगली सुअर, तराई का छोटा सुअर, जंगली बिल्ली, चूहे, गिलहरियाँ, नेवला 'ग्वाण' सई आदि पाये जाते है।

अभी वर्तमान में शिकार पर रोक लगा दी गई है। जिसके पास लायसेंस है वही शिकार कर सकते हैं पर नियम पूर्वक।

रामगंगा व कोसी नदियों के बीच एक २०० वर्ग मील का जंगल जंगली जानवरों के लिए बनाया गया है। जिसका निर्माण ई. सन् १९३५ में किया गया था।

पक्षी :

पर्वतीय तथा भाबर के क्षेत्र में बहुत प्रकार की चिड़िया पाई जाती है। जिसमें गिद्ध, उकाब, चील, बाज, आड़, जंगली कबूतर, सामान्य कबूतर, फाख्ते, गौरेया, कोयल, कठकोस 'सिटौला', 'घिनौडे', कौवे होते है। लुँगी १२,००० फुट की ऊँची, मुनाल ८,००० से १२,००० ऊँची, ककलांस या पोखराज मुर्गियाँ ५,००० से १०,००० तक की ऊँचाई में पायी जाती है। यह देखने में आकर्षक होती है। सिमकुकड़ एक सुन्दर चिड़िया होती है। जो मुर्गे जैसी दिखती है। तीतर, बटेर, चकोर, बुलबुल, चाँचर, 'मुसभ्पाकुज' उल्लु, भयापकुस्पौड़ आदि चिड़िया भी पाई जाती है।

अल्मोड़ा तो चिड़िया के मामले में धनी समझा जाता है। क्योंकि यहाँ मानसरोवर के राजहंस पाये जाते हैं।

भूतकाल में बाज पालने का रिवाज था क्योंकि उनको राज दरबार में बेचते थे।

कूर्माचलाधिपति राजा रूद्रचंद ने 'श्तैनिक शास्त्र' लिखा है जिसमें शिकार खेलने के तरीके बताये गये हैं।

सॉप और कीड़े – मकौड़े यहाँ पर ८ – ९ प्रकार की छिपकलियाँ पाई जाती है। गिरगिट, ग्वाण, भाबर में ज्यादा पाया जाता है। यह ४ फुट तक होती है। साँप भी २५ – ३० तरह के होते है इनमें से कई जहरीले होते हैं। भाबर में झाड़ियों में अजगर भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। जिनकी लम्बाई २५ – ३० फुट होती है। कई साँप बहुत सुन्दर सफेद चमकीले होते हैं। जोंक तो पहाड़ों में बरसात में लगभग हर पानी की जगह पर पायी जाती हैं। जंगलो में तो पत्तो पर लकड़ी की तरह दिखती है तथा

मनुष्य या जानवोरं के पैरों में कब चिपक जाती है पता ही नहीं चलता तथा जब तक पूरा खुन पीकर पेट नहीं भरता गिरती नहीं है। अगर गिराना हो तो नमक लगाने से गिरती है। तथा जहाँ लगती है वहाँ पकने का डर रहता है। जानवरों के तो नाम में घुस जाती है जब व पानी पीते है।

जलचर :

मछलियाँ बहुत तरह की होती है। कुछ ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो मांसाहारी नहीं पाये जाते है। वैसे अधिकतर लोग खाते हैं। कुछ ब्राह्मण, वैश्य ही नहीं खाते। रामगंगा, कोसी व सरयू में बड़ी – बड़ी मछलियाँ पकड़ते है। कुछ झीलों में से भी मारकर खाते हैं। इसको मारने के साधन अनेक प्रकार के 'गोदों', 'मैन' डालकर मारते है। मगर व सूस देशी इलाकों में पाये जाते हैं। पहाड़ों में मगर नहीं होते।

वेशभूषा :

कुमाऊँ के पुरुष धोती, पाजामा, अचकन, टोपी पहनते है तथा स्त्रियाँ अँगिया, घाघरा, लहंगा और धोती पहनती है।

कपड़ों के पहनावे से वर्ण की पहचान की जाती है। ब्राह्मण, वैश्य, शुद्र तथा क्षत्रिय स्त्रियों के वस्त्र भिन्न होते है।

पिछोड़ा तीज – त्यौहार, शादी आदि शुभ कामों में सुहागने पहनती है। स्त्रियों के आभूषणों में नाक की लौंग, नथ, गले का सूता, जंजीर माला, हँसुली, गलोबन्द, कान के मुनड़े, झुपझुपी, बाली और उतरौले, हाथ में कंगन, पहुँची, चूड़ियाँ, धागुले और अंगूठियाँ, पैर में बिछुवे, पाजेब आदि आते हैं। मूँगे की माला भी पहनते है। चेहरे पर सुन्दरता लाने के लिए हरा तिल गुदवाते थे। आभूषण सोने, चाँदी, पीतल, गिलट

आदि से बने होते है। अब तो शहरों से जानेवाले आभूषणों का चलन भी बढ़ गया है। तथा साड़ी, पेन्ट, कोट आदि ज्यादा पहनने लगे हैं।

खानपान :

यहाॅ के लोगों का मुख्य भोजन रोटी, चावल, दाल तथा सब्जी है। सुबह रोटी, सब्जी दोपहर में चावल, दाल तथा शाम को रोटी, सब्जी खायी जाती है। जो गरीब लोग होते है। वह झुंडर का भात, व सिसूण का साग, मडुवे की रोटी, गुड़ या नमक से रोटी खाते हैं। पर आजकल लगभग सभी के पास अच्छा भोजन दो वक्त का हो ही जाता है। क्योंकि वह लोग भी शहरों में कमाने जाते हैं।

त्यौहार आदि शुभ अवसरों पर पुवे, लगड़, गुड़पापडी, खीर, बड़े, डुबुके (चावल तथा सोयाबीन का) रोट, झाँझाबान्या, हलुवा, रसौट, छोई, सायी, आदि बनाते हैं।

कुमाऊँनी लोगों के सुलभ तथा प्रिय व्यंजनों में भटिया का जौल, मडुवे की रोटी, मडुवा का अखाड़ी, गहत की दाल व डुबुक, पल्यो या झोली (कड़ी), मेचुल, झनार, रस या मस्वाणी, चौसा आदि है।

जंगली फलों में हिसारु, काफल, किरमोड़ी, कुछ वनस्पतियों सिसूण, माँस को भी भोजन के रुप में लिया जाता है। निम्न कोटी (कुलीन) के लोगों के हाथ का बोजन नहीं खाया जाता। तथा कुवाँरी कन्या के कुमण के हाथ का भी नहीं खाया जाता।

रहन – सहन :

यहाँ समाज को चार वर्णों में बाँटा गया है ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र तथा वैश्य। इनकी भी कई उपजातियाँ है। जाति व्यवस्था के काफी कठोर नियम बनाये गये हैं।

यदि कुलीन वर्ग का व्यक्ति है तो घर के बाहर ही बैठेगा। उसको छूना नहीं है, पानी पीने का खाने का बरतन देंगे तो वह उसको धोकर उल्टा रख जाएगा तथा उस पर गौ मूत्र डालकर ही शुद्धिकरण हो सकेगा।

ताड़, भोटिया, बोक्सा, बनरौत जैसी आदिम जातियाँ आज भी अपने पुराने रीति रिवाज, खान – पान, रहन – सहन को अपनाये हुए दिखते है।

यहाँ पर सिक्ख, ईसाई, मुसलमान भी मिल जायेंगे। जो यहाँ के हो गये हैं।

सभी संस्कार, विवाह, नामकरण, जन्म, मृत्यु, व्रतबंध आदि पूरे रीति रिवाज के साथ निभाये जाते हैं तथा शुभ अवसरों पर ''शगुनखर'' या फाग, चाचरी आदि गाये जाते हैं।

वैसे तो एक पत्नी विवाह की परम्परा है। मगर वक्त के साथ उसमें भी बदलाव आ गया है। समाज पुरुष प्रधान है स्त्रियों की दशा दयनीय है। दहेज की परम्परा पहले नहीं थी। मगर अब जरुरी हो गया है। शादी से एक दिन पहले मँगनी होती है। जिसमें वर नहीं जाता। परिवार के ३, ५ या ७ सदस्य जाकर वधू को शकुन देते हैं। तथा देवर – भाभी को अँगूठी पहनाता है तथा गहने, कपड़े, फल – फूल, रुपये, चाबी आदि देता है।

धर्म – कर्म आस्था विश्वास :

यहाँ के लोग बहुत ही ज्यादा अंधश्रृद्धालु तथा भगवान में अथाह विश्वासु होते हैं। हिचकी आना अर्थात् कोई याद करता है। कौवे का कड़क आवाज में बोलना, झाड़ू देना, साँपों की लड़ाई देखना, सियार का रोना, एक छींक आना, बिल्ली का रोना आदि अशुभ मानते हैं।

कौवे का प्रातःकाल आँगन में बोलना किसी मेहमान के आने का अंदेशा होता है। आग के भुरभुराने का अर्थ कोई प्रिय व्यक्ति दूर से आप को याद कर रहा है।

समय – समय पर भगवान को अपनी फल देकर पूजा की जाती है। नहीं तो भगवान के नाराज होने का डर रहता है।

भगवती के काली माता के मंदिरों में बकरे काटकर अपनी इच्छा की पूर्ति करना भी माना जाता है। पर अब २ – ३ वर्षों से यह परम्परा बंद हो गयी है। पर फिर भी पूरी तरह समाप्त हो गयी ऐसा नहीं कह सकते। मन्नत के आधार पर हर तीन साल में बकरा या भैंसा काटा जाता है।

संदर्भ सूची

१ लोक सस्कृति के विविध आयाम – देवसिंह पोखरिया – पृ.स १

२. वही . ... पृ स २

३. वही .. .. पृ सं. १

४ वही . पृ सं ३

५ वही . . पृ सं ७२ से ७५

६. वही .... पृ.सं ७६, ७७

७ वही पृ स ७७, ७८

८. वही .. . .. . पृ.सं. ५